

अनन्तर/जनसत्ता/११ मार्च, २००७
(परिवर्द्धित)

डिंगल में मंगल गान

ओम थानवी

जिन्होंने पिछले दो लेख न पढ़े हों, उनके लिए: फ्लोरेंस में रामकथा व मानस पर शोध कर वहीं पश्चिमी राजस्थानी का व्याकरण तैयार करने वाला सत्ताईस साल का युवक लुइजी पियो तैस्सितोरी १९१४ में भारत आया था। भाषाविद जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन की मदद से उसे एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल (अब इंडिया) में नौकरी मिली। काम था राजपूताना के चारणी साहित्य और ऐतिहासिक स्रोतों का सर्वेक्षण और संपादन। कलकत्ता से वह जोधपुर गया। फिर बीकानेर। वहां १९१९ में उसकी मृत्यु हो गई। पांच साल में तैस्सितोरी ने डिंगल साहित्य की हस्तलिखित अनुपम पोथियों का संकलन और संपादन किया। इसके साथ सिंधु घाटी सभ्यता के जगतविख्यात केंद्र कालीबंगा (बीकानेर) की खोज की। ढेर सारी ठोस पुरातात्विक सामग्री की भी।

कोलकाता की मात् टैरेसा सरणी (पार्क स्ट्रीट) की पहली इमारत के अंधेरे पायदान पर कदम रखते वक्त आपको भले न लगे, ऊपर पहुंच कर इलहाम होगा कि स्वर्ग और नरक की सीढ़ियां जैसे एक साथ चढ़ आए हैं। हस्तलिखित और मुद्रित ग्रंथों का ऐसा खजाना कि कोई वजह नहीं आप वहां किसी दूसरे बहिश्त की कल्पना करें। और चीजों का रखरखाव ऐसा कि थोड़ी देर बाद ही जीवन-मरण की घुटन महसूस करने लगें।

यह एशियाटिक सोसायटी की नई इमारत है, जो आजादी के बाद बनी। संस्कृति मंत्रालय के अधीन अब यह स्वायत्त संस्थान है। सोसायटी १७८४ से काम कर रही है। पुरानी इमारत पिछवाड़े है। लगता है दोनों इमारतों के हर कोने में काल की गर्द और गंध बसी हो। नेपल्स से मुंबई होते हुए कलकत्ता पहुंच कर तैस्सितोरी ने ११ अप्रैल, १९१४ को सोसायटी के दरवाजे पर दस्तक दी थी। एशियाटिक सोसायटी जैसी नायाब संस्थाओं के साथ अंग्रेज हमारे लिए बाबूगीरी भी लेकर आए। सोसायटी की एक अलमारी में दो रोज की दौड़-धूप के बाद मिली तैस्सितोरी की मूल कार्ययोजना के पहले ही पृष्ठ पर उनकी टिप्पणी है- “सर्वे के लिए राजस्थान की आरंभिक यात्रा पर २२ जुलाई को निकल पाया... तीन महीने पूरी तरह बरबाद हुए क्योंकि कलकत्ता में अटका रहा; काम के सिलसिले में न कोई सुविधा मिली न साधन।”

गनीमत है तैस्सितोरी राजपूताना खाना हो गए। आज आए होते तो शायद उल्टे पांव लौट जाते। मैंने सोसायटी की पुस्तकालयाध्यक्ष से- जो किस्मत से अपने कमरे में मिलेंगी- तैस्सितोरी के संपादित ग्रंथों और काम के सालाना ब्योरे को देखने की गुजारिश की। वे जैसे नींद से जागीं। तैस्सितोरी? सोसायटी के लिए जानलेवा प्रवास में किए गए काम को देखते हुए जिसकी तस्वीर वारेन हेस्टिंग्स की शबीह के साथ टंगी होनी चाहिए थी, उस शख्स के साथ यहां भी बहुत बेरुखी देखने को मिली! भला हो विदुषी डॉ. वंदना मुखर्जी और माइक्रोफिश (फिल्म पर दस्तावेज) प्रभारी गायत्री घोष का जिन्होंने कुछ चीजें खोज निकालीं।

लेकिन मैं तैस्सितोरी की- और अब मेरी तरह कइयों की- प्रिय कृति “वेलि क्रिसन रुकमणी री” की हस्तलिखित प्रति आंखों से देखना चाहता था। संभव हो तो अंगुलियों की पोरों से छूना भी। सोसायटी की तरफ से प्रकाशित राजस्थानी हस्त-ग्रंथों की विवरणिका के दूसरे खंड में ‘वेलि’ का क्रमांक (२३४) मिल गया। परची हाथ में लहहाते हुए चौथी मंजिल पर संग्रह-कक्ष में पहुंचा। ऊंची टांड पर रखे एक लाल बस्ते को नीचे उतार कर, झाड़-पोंछ कर जो हस्तलिखित मेरे सामने रखा गया वह ‘वेलि’ नहीं था! वह गद्य में कोई विशाल पोथा था। ‘वेलि’ कवित्त है, एक छोटी-सी कृति। मैं कभी खुले हुए बस्ते को देखता, कभी खिड़की से झांकते अंधेरे को। विचलित देखकर कर्मचारी ने सफाई दी: ‘वेलि’ किसी दूसरे बस्ते में जरूर होगी। लेकिन उसका क्रमांक हमें नहीं मालूम। असल में विवरणिका हम नहीं बनाते। जिन्होंने बनाई, उन्होंने भूल की है। इस बस्ते में तो सौ साल से यही ग्रंथ सुरक्षित है।

फिर तैस्सितोरी द्वारा संपादित 'वेलि' कहां है? यह नहीं कहता कि गायब है। लेकिन ग्रंथों को सहेज कर रखने और सूचीपत्र छापने वाले विभाग एक ही संस्थान के अंग हैं। दोनों में तालमेल का यह हाल सोसायटी की बदहाली का चिंताजनक इशारा है। इसकी एक और वजह वहां पता चली। सोसायटी के संग्रह का इस्तेमाल विद्वानों में बहुत घट रहा है। मुझे उसी कर्मचारी ने दो टूक शब्दों में कहा: मैं बरसों से इसी कक्ष में काम करता हूँ, किसी राजस्थानी हस्त-ग्रंथ को देखने यहां भला आता कौन है?

बहरहाल, श्रीमती घोष से तैस्सितोरी के सालाना ब्योरों के माइक्रोफिश क्रमांक लेकर मैं जेरोक्स विभाग में पहुंचा। सब क्रमांक सही थे, लेकिन वहां बैठी- मूड़ी फांक रही- बहनजी बोली, तीन सौ पन्ने एक रोज में तो नहीं हो पाएंगे। दो रोज दफ्तर बंद है। होली है, फिर इतवार। डाकखर्च सहित शुल्क जमा करा दें तो सोमवार की शाम सारे कागजात डाक से खाना करवा देंगे।

राशि मेज पर रखते हुए हताश मुद्रा में मैं उठा, "डाकघर भिजवाने की जहमत न करें, खुद किसी को भेजकर उठवा लूंगा!"

बाहर चौरंगी मोड़ की खुली हवा में पहुंच कर ठिठक गया। किसी ने आवाज दी? नहीं, कोई नहीं था। मैदान की तरफ बढ़ चला। यह सोचते हुए कि तैस्सितोरी की मृत्यु भले बीकानेर में हुई, हो न हो उनकी आत्मा यहीं कहीं एशियाटिक सोसायटी में भटक रही होगी।

साहित्य से लेकर इतिहास और पुरातत्व तक तैस्सितोरी की रुचियां गहन थीं। पर मूलतः वे भाषा- खासकर व्याकरण- के विद्वान थे। राजस्थानी, प्राकृत और संस्कृत पर उनका अधिकार था। हिंदी और गुजराती पर भी।

उन्होंने इटली में रहते हुए फ्लोरेंस विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में जब छपे-अनछपे ग्रंथों के सहारे अध्ययन किया, तब बात अलग थी। कलकत्ता आकर अंग्रेजों की सोहबत में एशियाटिक सोसायटी में संपादक का काम पेचीदा था। उन्हें राजपूताना (राजस्थान) जाकर रहना था। वहां पं. रामकरण शर्मा और किशोरदान बारहठ जैसे सहयोगी तो मिले, लेकिन हर जगह अपेक्षित सहयोग नहीं। प्रतिलिपि करना दूर, कई लोग घर में रखे ग्रंथ पढ़ने नहीं देते थे। रजवाड़ों का राज था। जैसा कि उन्होंने अपनी कार्ययोजना (स्कीम) में लिखा भी, वहां लोग एशियाटिक सोसायटी का नाम तक नहीं जानते थे। अंग्रेज अफसरों के जब-तब जारी फरमान बेअसर साबित हुए। जहां ग्रंथ घरों या मंदिरों में थे, वहां रियासत के निर्देश भी निरर्थक थे।

बीकानेर के महाराजा गंगासिंह और उनके प्रधानमंत्री केएम पणिक्कर जैसा सहयोग तैस्सितोरी को कहीं नहीं मिला। जयपुर में पोथीखाने के प्रभारी पं. मधुसूदन ओझा ने तो एक परदेसी को बेशकीमती हस्तलिखित ग्रंथ दिखाने से इनकार कर दिया था। जोधपुर में लंबे प्रवास अच्छे-खासे काम के बावजूद वे अप्रत्याशित मुश्किलों में पड़ गए। अंततः उन्हें रियासत छोड़कर बीकानेर जाना पड़ा।

जोधपुर के महाराजा सुमेरसिंह नादान थे। राजकाज उनके चाचा सर प्रताप चलाते थे, जो शायद इसी के लिए ईडर रियासत की बादशाहत छोड़ आए थे। महकमा तवारीख के गुमानसिंह खीची की शिकायत पर उन्होंने तैस्सितोरी को अपना काम समेट लेने को कहा। जोधपुर में तैस्सितोरी के सहायक रहे पोकरण निवासी उदयराज उज्ज्वल के एक संस्मरण (१९५६) के अनुसार: (तैस्सितोरी के काम की) "सफलता से महकमा तवारीख के सुपरिंटेंडेंट खीची गुमानसिंह जी और उनके अहलकारों को ईर्ष्या हुई। गुमानसिंहजी फौजी थे, विद्वान तो थे नहीं। वे लोगों के बहकावे में आ गए। वे सर प्रताप के बड़े भरोसेमंद और कृपापात्र थे। उन्होंने सर साहब के कान भरे। फिर बड़े साहब (पॉलिटिकल एजेंट) से पत्राचार कर तैस्सितोरी के लिए हुकुम जारी कर दिया गया कि, जोधपुर से अपना काम हटा लो। साहब (तैस्सितोरी) को इस हरकत से बहुत अफसोस हुआ।"

अपने खास सहायक किशोरदान को तैस्सितोरी बीकानेर साथ ले गए। उदयराज उज्ज्वल के मुताबिक, "मारवाड़ (जोधपुर) का एक विद्वान और जागीरदार (किशोरदान) बीकानेर जाकर तैस्सितोरी के साथ काम करे, यह बात भी महकमा तवारीख वालों को सुहाई नहीं। न खुद काम करें, न दूसरों को करने दें!... नतीजा यह हुआ कि किशोरदानजी के पास सर प्रताप का हुकुम पहुंचा कि महकमे में आकर काम करें, वरना आपकी जागीर जब्त कर ली जाएगी। इस पर किशोरदान को जबरन सौ रुपए की नौकरी छोड़कर तीस रुपए माहवार पर (महकमा) तवारीख में जोधपुर लौटना पड़ा।"

तैस्सितोरी को जोधपुर बहुत रास आया था। डायरी में उन्होंने इसका इजहार किया है। वहां अपने जमे-जमाए काम के उजड़ जाने से वे बहुत आहत हुए। लेकिन सार्वजनिक तौर पर उस अप्रिय प्रसंग की वजह उन्होंने शायद कभी नहीं बताई। उदिने (इटली) में उनके भानजे गुइदो पियानो के पास रखे एक पत्र से इस पर कुछ रोशनी पड़ती है, जो उन्होंने डॉ. ग्रियर्सन को २८ अक्तूबर, १९१४ को लिखा था: “जोधपुर के असखदार लोगों में इतनी रंजिशें हैं कि सबको खुश रखना नामुमकिन है। अपने सहायक के रूप में पंडित रामकरण (अत्यंत कुशाग्र मारवाड़ी) को रखकर मैंने बहुतों की नाराजगी मोल ले ली है।” ये वही पं. रामकरण थे, जिन्होंने १९०१ में राजस्थानी का व्याकरण लिखा।

जोधपुर से विदाई की घड़ी की बेचैनी के अनुभव को उन्होंने अपनी इतालवी डायरी में २९ फरवरी, १९१६ को बीकानेर में लिखा: “जोधपुर! रेगिस्तान के मोहपाश! अब समझा हूं कि तुमने मुझ पर कैसा जादू डाला। यादों की कैसी घुमड़न और बेचैनी। मनोहर गलियों की मन में जाने कितनी छवियां हैं, जानी और पहचानी हुई गलियां; रंग-बिरंगे चटक रंगों में लोगों के झुण्ड, घूंघट के पार इत्र की खुशबू बिखरेती, पायल झनकाती स्त्रियां। जोधपुर! मेरी धमनियों के राज-रोग!”

राजपूताना में काम की मुश्किलों का अंदाजा तैस्सितोरी की उक्त डायरी और पत्रों से होता है। जैन मुनि विजयधर्म सूरि को वे गुरु का मान देते थे। उनसे इटली से पत्राचार कायम था; मुनि की पत्रिका ‘जैनशासन’ वे वहां मंगाते थे। जोधपुर पहुंच कर उनके प्रत्यक्ष संपर्क में आ गए। उन्हें जोधपुर ‘गेस्ट हाउस’ से १३ सितंबर, १९१४ को अपनी सधी और सुलेख हिंदी में (यहां जस-की-तस उद्धृत) तैस्सितोरी लिखते हैं:

“गए हफ़ते में मैं नागौर गया था। जाने का सबब यह था कि नागौर में दिगंबरों का एक बड़ा भंडार कि जिस में आसपास १० हज़ार पुस्तकें हैं एक भट्टारक के अधिकार में है - ऐसे सुनने में आया था। और यह भी सुना था कि वह भंडार सदाइ बंद रहता है और उसका अधिकारी भट्टारक जो है, सो भंडार खोलने को इनकार दे रहते हैं। इस वास्ते जोधपुर दरबार के हुकुम की चिट्ठी लेकर उधर गया था, परंतु राज्य के हुकुम होने पर भी उस भट्टारक ने कुछ नहीं दिखलाया। अफ़सोस की बात है कि इतनी पुस्तक कि बेशक प्राचीन और अमूल्य हैं, कीड़ों का भोजन होनेवाली हैं।”

आपका आज्ञाकारी भक्त

(दस्तखत इतालवी में)

मगर कुछ जगहों से तैस्सितोरी को हस्त-ग्रंथों के अध्ययन में अप्रत्याशित सहयोग भी मिला। ‘दरबार’ के रुक्के के बावजूद जिस दरवाजे से उन्हें या उनके सहायकों को लौटना पड़ा, वहां मामूली निजी हवालों से ग्रंथ मिल गए। एक सहायक रामदयाल उज्ज्वल के पचास वर्ष पहले दिए गए वक्तव्य के मुताबिक: “अप्रैल १९१५ में (सहायक की) नियुक्ति के फौरन बाद मैं फलोदी गया। वहां पहले कई लोग जा चुके थे, पर एक भी पोथी हाथ नहीं लगी थी। वहां के मथेण जवाहरमलजी मेरे दादा को जानते थे। वहीं के मनसुखदासजी गुचिया ने उनसे मेरा परिचय कराया। मथेण बोले, ‘नाथूरामजी का पोता और वह भी आपके साथ आया है, मना करने की गुंजाइश नहीं है।’ बेशुमार पुस्तकों का गट्टर उन्होंने सामने रख दिया। कहा कि आपकी उम्र तक पुस्तकें खत्म नहीं होंगी, हो गईं तो सोजत-नागौर के जतियों (यति, जैन प्रचारक) को भी लिख दूंगा। एक-एक कर पोथी मैं उनसे लेता और नकल उतरवा कर लौटा देता।”

तैस्सितोरी ने लिखा है कि ज्यादातर ग्रंथ उन्होंने इसी तरह मांग कर जमा किए या उनकी प्रतियां करवाईं। बहुत-सी प्रतियां खरीदीं भी। एशियाटिक सोसायटी को भेजे गए एक प्रतिवेदन में उन्होंने लिखा है, “कुछ (हस्तलिखित प्रतियां) तो एक-एक रूप में मिल गईं, जबकि उनकी नकल उतरवाना दस-बारह रूप में पड़ता!... मुश्किल यही है कि हर रचना के कई पाठांतर मिल जाते हैं, जिनमें कुछ अशुद्ध होते हैं।”

तैस्सितोरी की दिलचस्पी डिंगल के साथ राजस्थानी लोकगीतों में भी थी। वार-त्योहारों से संबंधित लोकगीतों की एक कापी तैस्सितोरी की हस्तलिपि में मैंने बीकानेर अभिलेखागार में देखी। सोसायटी को प्रस्तुत

१९१६ के प्रगति ब्योरे के परिशिष्ट में राजाओं की तारीफ में गाए जाने वाले गीतों के उद्धरण हैं। 'ढोला-मारू रा दूहा' भी उन्हीं की खोज थी। काव्य के अलावा गद्य-कृतियों (ख्यात, बात, वंशावली आदि) का संकलन भी उन्होंने बड़ी संख्या में किया था। इनमें मुहणोत नैणसी री ख्यात (ख्याति भरा इतिहास) प्रसिद्ध ग्रंथ है। सोसायटी के एक सूचीपत्र में "मारवाड़ रा ओखाणा" (कहावतें) संकलन की जानकारी भी मिली।

बीकानेर में 'राजस्थान भारती' (१९५७) में दर्ज एक प्रत्यक्षदर्शी के संस्मरण से पता चलता है कि तैस्सितोरी हिंदी के अलावा राजस्थानी भी सहजता से बोलते थे। हालांकि बीकानेर में उनकी बोली पर जोधपुर का "लहजा" छाया रहता था, जहां उन्होंने राजस्थानी बोलना शुरू किया।

एशियाटिक सोसायटी में अपनी काबिलियत की धाक तैस्सितोरी ने पहले ही साल जमा दी थी, जब राजपूताने की पांच महीने की आरंभिक यात्रा से लौटकर दिसंबर, १९१४ में उन्होंने अपनी विस्तृत कार्ययोजना (स्कीम) पेश की। लगे हाथ तब उन्होंने जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, नागौर, बूंदी, रतलाम, उज्जैन आदि स्थानों से हस्तलिखित ग्रंथ जुटा कर एक विगतवार सूची बना दी। 'वचनिका' पर काम शुरू कर दिया। सबसे अहम बात यह कि डिंगल और पिंगल पर महामहोपाध्याय ह्रस्वाद शास्त्री की भ्रामक धारणा का उन्होंने साहस के साथ खंडन किया। आगे जाकर सोसायटी के अध्यक्ष बनने वाले शास्त्री संस्कृत के विद्वान थे। उन्होंने ही राजपूताने में चारणी साहित्य के अध्ययन की पहल की थी। उनकी रिपोर्ट १९१३ में छपी, जिसके आधार पर तैस्सितोरी ने अपना अध्ययन शुरू किया। शास्त्री का मानना था कि डिंगल और पिंगल राजस्थानी भाषा के दो काव्य-रूप हैं। तैस्सितोरी ने साफ किया कि दोनों जुदा भाषाएं हैं। डिंगल सृजन की स्थानीय भाषा है, पिंगल (राजस्थानी मिश्रित) ब्रज-भाषा। उन्होंने इस पर भी जोर दिया कि डिंगल "चारणों की बनावटी भाषा" नहीं है और कविता में भाट से चारण ज्यादा ओज रखते हैं। "चारणों की रचनाओं का साहित्यिक मूल्य है, हालांकि उनका पेशा अब ढलान पर है और राजपूत शौर्य के ये होमर गांवों में आज मुफलिसी की जिंदगी जी रहे हैं।" तैस्सितोरी को लगता था कि शास्त्री का "ब्राह्मणवादी रुझान" वाली अध्ययन पद्धति वैज्ञानिक कम है।

तैस्सितोरी की साहित्य की समझ देखने के लिए 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' की टीका का जायजा ही काफी होगा। सोलहवीं सदी में रची गई तीन सौ पांच छंदों वाली 'वेलि' की उन्हें आठ हस्तलिखित प्रतियां मिलीं। सहायकों की मदद से उन्होंने कृति को एक रूप देने की कोशिश की। रचना की बाबत वे कहते हैं कि सिद्ध चारणों ने 'वेलि' को असरदार भाषा में पांचवें वेद या उन्नीसवें पुराण की 'घोर अतिरंजित' संज्ञा भले दे डाली हो, "समुचित" भाषा में इतना जरूर कहा जा सकता है कि "पृथ्वीराज की यह छोटी-सी रचना डिंगल साहित्य का सबसे परिष्कृत काव्य है; काव्य-कौशल का अनूठा रूप जिसमें, आगरा के ताजमहल की तरह, बारीकी का विस्तार अपनी सादगी में अभिव्यंजित है और अनुभूति की गहराई विधा की निर्मलता में गुंफित है।" तैस्सितोरी चारणी साहित्य की महिमा से अभिभूत थे। 'वेलि' एक राजपूत की रचना थी। इस पर अपनी टीका में उन्होंने साफ किया: "इतना परिष्कृत काव्य किसी राजपूत की रचना है, यह देखकर हैरान न हों।..." हम बड़ा अन्याय करेंगे अगर यही सोचें कि राजपूत एक संवेदनहीन योद्धा होता है। "वह रणभूमि में योद्धा होता है, लेकिन अमन की घड़ी में नितांत अलग शख्सियत।"

आम राजाओं की तरह पृथ्वीराज राठौड़ 'पीथल' की अकबर के दरबार में हाजरी थी, इसके बावजूद वे जुझारू महाराणा प्रताप के खैरख्वाह थे। कूटनीतिक विवेक को परे रख दें तो 'पीथल' गहरे सौंदर्य-प्रेमी थे। 'वेलि' पढ़ते हुए आपको कालिदास और जयदेव की याद आएगी। हेमंत के आगमन पर 'वेलि' का एक छंद है:

निहसे वूठौ घण विणु नीलाणी
वसुधा थलि थलि जल वसइ।
प्रथम समागम वसत्र पदमणी
लीधे किरि ग्रहणा लसइ॥

मेघ गरजते हुए बरस रहे हैं और हरियाली से रहित स्थानों पर जल भरा हुआ है। जैसे प्रथम समागम के समय

किसी स्त्री के सारे वस्त्र उतारे हों और शरीर पर केवल अलंकार सुशोभित हों।

तरु लता पल्लवित तृणे अंकुरित
नीलाणी नीलम्बर न्याइ।
प्रथमी नदिमै हार पहरिया
पहिरे दादुर नूपुर पाइ।।

पेड़ों और लताओं पर नए पल्लव आ गए हैं, तृणों के अंकुर फूट पड़े हैं। पृथ्वी पर हरियाली ऐसे छाई है, जैसे किसी नायिका ने हरा परिधान पहना हो। पृथ्वी (रूपी नायिका) ने नदी रूपी हार धारण किया है और पैरों में मेंढक रूपी नूपुर।

(डॉ. पुरुषोत्तम आसोपा का अनुवाद)

पृथ्वीराज गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे। अपनी समालोचना में इस संबंध में तैस्सितोरी ने महत्वपूर्ण स्थापना की है कि सोलहवीं सदी में धार्मिक भावनाओं के उद्रेक ने पूरे देश को घेर रखा था: धुर पूरब में एक ब्राह्मण अपने काव्य में राम की भक्ति (मानस) में लीन था और पश्चिम में एक राजपूत कृष्ण की लीला (वेलि) के मंगल गान में; तैस्सितोरी कहते हैं: “यह ज्ञान की जगह भक्ति का पुनर्जागरण था; हालांकि काव्य में एक तरफ (तुलसी) तपोमय संयम केंद्र में था, दूसरी तरफ (पीथल) विषयासक्ति।”

‘वेलि’ में एक छंद (२९१) में पृथ्वीराज कहते हैं कि उनकी रचना के “बीज” भागवत (पुराण) में हैं। इस पर तैस्सितोरी अपनी टीका में ‘वेलि’ और भागवत पुराण के कई अंश आमने-सामने रख देते हैं। यह साबित करते हुए कि ताने-बाने को छोड़कर दोनों में बहुत बड़ी दूरी है।

अध्येता के नाते तैस्सितोरी की ऐसी विद्वत्ता के प्रमाण उनके पत्रों में भी मिलते हैं। कामकाजी पत्रों को छोड़कर बाकी पत्र ज्यादातर हिंदी और अंग्रेजी में हैं, कुछेक राजस्थानी में। वे हाथ से लिखना पसंद करते थे। उनकी लिखाई और भाषा की सहजता देखकर आप अभिभूत नहीं, भावुक भी हो सकते हैं। साफगोई के साथ टकसाली लिपि, करीने की वाक्य-संरचना और उर्दू शब्दों में नुक्तों तक का समुचित प्रयोग। संस्कृत और हिंदी की शिक्षा उन्होंने फ्लोरेंस में पाई। राजस्थानी और गुजराती का ज्ञान वहां विश्वविद्यालय में रखे हस्तग्रंथों का अध्ययन करते हुए खुद अर्जित किया। हिंदी लिखने का अभ्यास भी वहीं शुरू किया, पर हाथ जोधपुर पहुंचने के बाद खुला। पांच साल में उनकी हिंदी कितनी रवां हो गई थी, इसका अंदाजा पत्रों से बखूबी हो जाता है।

हिंदी में तैस्सितोरी का पत्राचार कई लोगों से हुआ होगा। लेकिन भारत में जैन आचार्य विजयधर्म सूरि के नाम लित्रे पत्र ही ज्यादा सुरक्षित रह सके। इटली में कुछ पत्र तैस्सितोरी के भानजे पियानो के संग्रह में हैं और डॉ. ग्रियर्सन और जॉन मार्शल आदि से हुआ पत्राचार लंदन की इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी के दस्तावेजों में।

जैनाचार्य उद्दट विद्वान थे और अनेक विदेशी शोधकर्ताओं से उनका नियमित संपर्क था। १९१० में इतालवी पत्रिका ‘जर्नल एशियाटिक’ में आचार्य की एक योजना श्रीयशोविजय ग्रंथमाला पर छपे एक समीक्षा-लेख को पढ़कर शायद तैस्सितोरी उनकी ओर उन्मुख हुए। भारतविद् प्रो. जेकबी ने भी उन्हें आचार्य को पत्र लिखने की सलाह दी। आचार्य ने- जो तब बनारस में थे- तैस्सितोरी के पहले ही पत्र के जवाब में “प्राकृत मार्गोपदेशिका” भेजी और अपनी पत्रिका “जैन शासन” के अंक भी। यह संपर्क आगे प्रगाढ़ होता गया। भारत आने पर तैस्सितोरी ने ‘गुरु’ की संक्षिप्त जीवनी भी लिखी।

शुरू में उन्होंने आचार्य को अंग्रेजी में पत्र लिखे। लेकिन बाद में हिंदी का अभ्यास शुरू कर दिया। राजस्थानी को लेकर काम करने की इच्छा उदिने से लिखे पत्रों में साफ है। २३ जुलाई, १९१३ के एक

(अंग्रेजी) पत्र में वे लिखते हैं कि मैं कहीं राजपूताने में ही नौकरी पाना चाहता हूँ, ताकि मास्वाड़ी और ढूंढाड़ी के साहित्य पर काम कर सकूँ, जो हस्तलिखित ग्रंथों में छुपा पड़ा है। “मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि गुजराती और राजपूताना की भाषाओं को जितना महत्व दिया गया है वे उससे कहीं ज्यादा सुंदर और महत्वपूर्ण हैं।” राजपूताना में नौकरी ढूंढने के अपने प्रयासों की जानकारी देते हुए उस पत्र में तैस्सितोरी ने लिखा था: “मैं फिलहाल पच्चीस वर्ष का हूँ और अविवाहित हूँ। यह मेरी प्रतिज्ञा है कि शादी करूंगा तो किसी भारतीय लड़की से, अन्यथा नहीं।”

१६ अक्टूबर, १९१३ को उदिने से तैस्सितोरी ने हिंदी में पत्र लिखा। लिखाई सुलेख थी, भाषा कुछ कच्ची मगर प्रभावशाली: “गुरु महाराज! जब आपका गुजराती में लिखा हुआ कृपापत्र मेरे हाथ आया, तब जो आनंद मुझको हुआ सो किस तरह मुझसे कह जावेगा?” दूसरे पृष्ठ के अंत में: “इतना ही मतलब हिंदी में लिखकर, आगे जो शेष है, सो अंग्रेजी में लिखता हूँ क्योंकि अभ्यास न होने से मुझको हिंदी या गुजराती में लिखना कठिन है। लेकिन मेरी यही आशा है कि जब मैं हिन्दुस्तान में हूँगा, तब इन दोनों जबानों में जल्द प्रवीण हूँगा।..”

भारत आकर उनका हिंदी का अभ्यास निखरता गया। भाषा में अनुवाद की जगह हिंदी का स्वभाव झलकने लगा। वे संधि और समास का प्रयोग सहजता से करते थे। जोधपुर से ४ जनवरी, १९१५ का पत्र देखिए:

“उपाध्याय श्रीइंद्रविजयजी की सेवा में,

आपकी भेजी हुई उदैपुर की गजल मिली। यह पुस्तक सिंधी टेकचंदजी ने बनारस से मेरे पास भेजी है। वे यहां नहीं आए। और यशोभद्रसूरि के संबंध में दीपविजय कविराज का लिखा हुआ अंश भी मुझ को मिला। मैं आप की अनुपम कृपा के लिये अंतःकरण से धन्यवाद देता हूँ।

अत्यंत शोक के साथ लिखा जाता है कि मेरा छोटा भाई, जो सेना में नौकर था, पर्वत से गिरकर मर गया। ईश्वरेच्छा। क्या किया जाए,

मैं नौ तारीख शनिवार को प्रातःकाल खाना होकर फालना करीब दो बजे पहुंचूंगा। और आशा है कि शाम को आप के पास पहुंच जाऊंगा।

पूज्यपाद आचार्यवर्य श्रीधर्मविजयसूरिजी के चरणों में मेरा प्रणाम निवेदन करें। ”

कई पत्र तैस्सितोरी के काम की ललक और लगन जाहिर करते हैं। सुराणा समुदाय के अतीत की पड़ताल की जद्दोजहद में १६ दिसंबर, १९१६ को बीकानेर से- आचार्य इंद्रविजय को ही- लिखा था:

“...गए दिनों में मैं देसणोक और जांगलू की तरफ दौरे में गया था, और मोरखाणो भी गया था, जहां सुराणों की कुलदेवी सुसाणीजी का एक पुराणा मंदिर है। और सुराणों का कुछ वृत्तान्त उक्त “महाजनवंशमुक्तावली” में मिला, और दूसरे किसी ग्रन्थ में सुराणों और सुसाणीजी का कुछ और वृत्तान्त होवे, तो आप कृपा करके फिर भेजें। बड़ी कृपा होगी। और उक्त मन्दिर में एक संवत् १२२९ का लेख मिला, सो इस माफिक है:-

सं १२२९ श्री. देव्या सुसाणोविचैत्ये संप्ताप्ती सह-/लाकोट आगती भोइलाहिणिं जावजीव द्रेविआ हि/तः

सो इसका क्या मतलब है? मैं जानता हूँ कि किसी ने मन्दिर के वास्ते कुछ दान दिया जिसका लेख है। परन्तु लेख में ऐसे शब्द आते हैं कि जिनका अर्थ मालूम नहीं होता।..”

आचार्य विजयधर्म सूरि और उनके ‘भक्त’ तैस्सितोरी के बीच मांसाहार पर भी दिलचस्प पत्राचार हुआ। आचार्य ने सतत सहयोग और सौम्य बर्ताव से तैस्सितोरी का दिल जीत लिया था। लेकिन उन्हें वे पूर्ण शाकाहारी नहीं बना सके। आचार्य की यह शायद भावुक जिद थी। तैस्सितोरी ने उन्हें इटली से (अंग्रेजी पत्र) लिखा कि “मेरी शाकाहारी बन जाने की उत्कट इच्छा है, लेकिन मेरे लिए यह भारत पहुंचने के बाद ही संभव हो पाएगा।” कलकत्ता पहुंच कर उन्हें लगा बोर्डिंग हाउस में रहते यह संभव नहीं होगा। गुरु को उन्होंने फिर लिखा, “...वह दिन शीघ्र आएगा जब मैं इस थोड़ी-सी (सामिष) मात्रा का भी त्याग कर दूंगा, पर उसके लिए मेरा अपना रसोइया होना चाहिए। मेरा खयाल है राजपूताना में व्यवस्था कर लूंगा।”

श्रेष्ठ शाकाहारी वह है जो शाकाहार को किसी पर थोपे नहीं। स्वाधीनता आखिर दूसरे की आजादी की रक्षा है, महज अपनी नहीं। आचार्य ने राजपूताना में तैस्सितोरी से शाकाहार का इस्सारा शायद जारी रखा। एक रोज, १९ अगस्त, १९१४ को, मनुस्मृति की बहस में तैस्सितोरी ने कुछ विनय के साथ गुरु के मत का सप्रमाण खण्डन कर दिया: “आपके लिखे हुए सब विषयों में मैं सहमत हूँ। आपके और मेरे मत में केवल इतना ही अन्तर है कि मेरे विचार से मनुस्मृति में केवल अविधिपूर्वक मांसभक्षण का निषेध है, क्योंकि मनुस्मृति के अध्याय ३, श्लोक २६८-२७०, और अध्याय ५, श्लोक २६-३३ में विधिपूर्वक मांसभक्षण के लिये विधान है और अध्याय ५, श्लोक ३५ में विधिपूर्वक मांसभक्षण न करनेवालों के लिए दण्ड भी लिखा है।”

कम लोगों को मालूम होगा कि भारत में तैस्सितोरी नियमित रूप से डायरी लिखते थे। यह निजी डायरी उस डायरी से अलग है, जिसमें वे अपने सर्वे के कामकाज, खर्ज, नियुक्तियों, खतो-किताबत के ब्योरे लिखा करते थे। मातृभाषा इतालवी में लिखी निजी डायरी उनके व्यक्तित्व को समझने का बेहतर जरिया हो सकती है। जोधपुर छोड़ने की कसक का एक डायरी-अंश आप ऊपर पढ़ आए हैं। डायरी में २९८ पृष्ठ हैं। २४ मार्च, १९१४ को नेपल्स से भारत के लिए खाना होने के साथ उन्होंने यह डायरी लिखनी शुरू कर दी थी। यह सिलसिला बीकानेर में ५ नवंबर, १९१९ तक निर्बाध चलता रहा। उसी रोज वे लंबी छुट्टी के बाद इटली से लौटे थे। लौटते ही बीमार पड़े और पखवाड़े बाद उनकी मृत्यु हो गई। चुनिंदा सामान के साथ डायरी उनके पिता तक पहुंची। डायरी के पन्ने जर्जर थे। तैस्सितोरी की बहनों एलेना और अंतोनिएता ने मेहनत कर पूरी डायरी की शब्दशः नकल उतार कर रख ली।

डायरी पढ़कर महसूस होता है कि तैस्सितोरी कितने संवेदनशील और संकल्प से भरे इंसान थे। उनकी कामकाजी भाषा तटस्थ थी, लेकिन डायरी में जगह-जगह कविता की खनक है। चीजों, घटनाओं और लोगों को देखने का उनका तरीका पैना मगर सरल था। कलकत्ता में, जब वे बेसब्री से राजपूताना खानगी के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे, उनकी मुलाकात कविगुरु रवींद्रनाथ से हुई। ६ मई, १९१४ को वे लिखते हैं: “चंद्री ने मेरी मुलाकात कवि रवींद्रनाथ टैगोर से करवाई। कुछ देर मेरा उनसे वार्तालाप हुआ। वे चश्मा पहनते हैं। उनकी लंबी दाढ़ी के केशों में सफेदी ज्यादा है।... उनकी अत्यंत मधुर आवाज सुनकर मैं अभिभूत हुआ हूँ।” ऐसे ही आचार्य विजयधर्म सूरि, पं. रामकरण, किशोरदान बारहठ और जॉन मार्शल से पहली मुलाकात का जिक्र भी डायरी में दर्ज है। साथ ही जोधपुर विवाद का नाटकीय घटनाक्रम, बीकानेर के दिन, घर-गांव की याद, ऊंट की सवारी और तंबुओं के रैन-बसेरे वाली यात्राओं का रोमांच, पुरातत्व संधान, इटली से भाई की मृत्यु की खबर, विश्वयुद्ध में इटली की शिक्कत और उदिने पर दुश्मनों के कब्जे आदि के अनेक ब्योरे, जिन्होंने उनके जीवन को मथा।

डायरी का सबसे दर्दभरा पन्ना १६ मई, १९१९ का है। तैस्सितोरी छुट्टी लेकर उदिने पहुंचे। बस्ती के कासीगाना मार्ग पर अपने सारे परिवार से मिलने को वे बेताब थे। घर पहुंचे तो वहां कोई नहीं मिला। मां सात दिन पहले चल बसी थीं। तैस्सितोरी डायरी में लिखते हैं- “मैंने इस शोक समाचार पर कोई बाहरी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। हे मां, यह शांत प्रतिक्रिया तुम्हारी प्रार्थनाओं का नतीजा रही होगी। कितना व्यग्र था कि आखिरी सफर से पहले मैं तुम्हारे दर्शन कर सकूँ। तुम्हारा अभिवादन करूँ। कल फ्लोरेंस में पिताजी और बहनों से मिलूंगा। रुके हुए आंसू तब बह निकलेंगे। हम मिलकर विलाप करेंगे और एक-दूसरे को सांत्वना देंगे।”

तैस्सितोरी के भानजे पियानो के संग्रह में डायरी में तैस्सितोरी की खींची हुई साढ़े चार सौ तस्वीरें भी हैं। पहली तस्वीर मार्च १९१४ की है, आखिरी अगस्त १९१९ की। संपर्क में आने वाले लोगों के अलावा इनमें राजपूताने के मेलों, यात्रा के शिविरों, महलों, गांवों और जन-जीवन की छवियां हैं। तस्वीरों का यह संग्रह तैस्सितोरी के व्यक्तित्व की अलग भंगिमा प्रस्तुत करता है।

डॉ.सुनीतिकुमार चटर्जी ने १९५६ में बीकानेर में हुए तैस्सितोरी स्मृति समारोह में कहा था कि उन्नीसवीं सदी तक, जब तक खड़ीबोली हिंदी का विकास नहीं हुआ था, उत्तर भारत में डिंगल, पुरानी ब्रज और अवधी

भाषाओं ने ही साहित्य की मशाल थाम रखी थी। कहना न होगा, तैस्सितोरी के कारण डिंगल को साहित्य में बड़े पैमाने पर प्रतिष्ठा हासिल हुई। लेकिन लगता है अब वह फिर भुला दी गई है।

डिंगल राजस्थानी का सबसे दुरूह रूप माना जाता है। लेकिन तैस्सितोरी ने डिंगल साहित्य में इतिहास का भी संधान किया। हालांकि पांच साल के वक्फे में उनको ज्यादा अवकाश नहीं मिला, लेकिन बीकानेर का जो इतिहास उन्होंने वाचिक साहित्य की मदद से लिखा, वह उनके नजरिए को पुष्ट करने के लिए काफी है। यह समझना भूल होगी कि वे साहित्य को इतिहास समझते थे। चारण काव्य ऐतिहासिक चरित्रों और घटनाओं के इर्द-गिर्द रचा जाता था, वे उसकी मदद से इतिहास के उलझे हुए तार जोड़ना संभाव्य समझते थे। बराबर इस अहसास को सामने रखते हुए कि चारणी काव्य रचनाएं अक्सर अतिरंजित होती हैं।

इस प्रसंग में एशियाटिक सोसायटी के लिए अक्टूबर १९१८ में संपादित दूसरी कृति पर नजर डालें। सोसायटी की पत्रिका में सूजा बीटू की रचना “छंद राव जैत सी रो” पर तैस्सितोरी की टीका उनकी मृत्यु के एक साल बाद छपी। सन् १५३३ में रची गई यह काव्य-कृति बीकानेर रियासत के बारे में उपलब्ध सबसे पुराना दस्तावेज है। इसे पढ़कर साहित्य से इतिहास का रिश्ता और फासला दोनों साफ समझे जा सकते हैं। रचना में बाबर के बेटे कामरान (रचना में ‘कामरो’) को बीकानेर से खदेड़ने की दास्तान है। कामरान की फौज ने लाहौर से भटनेर (हनुमानगढ़) के रास्ते बीकानेर पर धावा बोला। बीकानेर के (तीसरे) राजा जैत सी के हाथों उसकी हार हुई। तब तक मुगलों की सल्तनत ने देश में पूरे पांव नहीं पसारे थे।

“छंद” में युद्ध के बारीक- हालांकि इकतरफा- वर्णन के साथ जैत सी के साथ हरावल दस्ते में लड़ने वाले एक सौ नौ घुड़सवारों का जिक्र उनके घोड़ों के नाम सहित दर्ज है। तैस्सितोरी लिखते हैं, “छंद की मामूली भूलों और अतिरंजना को छोड़ इस कृति का ऐतिहासिक महत्त्व असंदिग्ध है।” वे दूसरी अतिरंजना की तरफ भी इशारा करते हैं कि मुगल इतिहासकार इस युद्ध का कहीं जिक्र नहीं करते, क्योंकि बाबर के बेटे की यह अप्रत्याशित हार थी। तैस्सितोरी लिखते हैं, “यह बात कविता का मोल बढ़ा देती है, क्योंकि इससे भारत के इतिहास में रही एक और दरार पाटी जा सकती है।”

कविता में इतिहास की बारीक पड़ताल के बाद तैस्सितोरी कविता की समालोचना पर आते ही, दूसरे ग्रंथों के संपादन की तरह, छंद के प्रकार, पाठांतर, वर्तनी और मात्राओं के भेद के ऐसे खुलासे में जाते हैं कि किसी भी भाषा-शास्त्री को उनसे स्पृहा होगी।

तैस्सितोरी ने एक दफा कहा था: मैं अंग्रेज नहीं हूँ, न अंग्रेजों जैसा हूँ। जाने-माने इतिहासकार रामशरण शर्मा के मुताबिक “तैस्सितोरी की इतिहास की समझ जेम्स टॉड और एके फोर्बेस के मुकाबले कहीं ज्यादा थी।” शर्मा यह भी कहते हैं कि तैस्सितोरी का विशाल ग्रंथ-संग्रह राजस्थान के इतिहास लेखन में बहुत मददगार साबित हो सकता है। “जहां तक मुझे जानकारी है, इस स्रोत सामग्री का अब तक कोई इस्तेमाल नहीं हुआ है।”

राजपूताने में तैस्सितोरी के काम पर एशियाटिक सोसायटी में रखे सालाना पांच ब्योरो और इटली के पियानो संग्रह में राजस्थान के इतिहास को लेकर काफी सामग्री मौजूद है। सालाना ब्योरे अपने आप में अहम दस्तावेज हैं। उनमें गद्य और पद्य की कृतियों, शिलालेखों, लोक मान्यताओं आदि के सहारे भाषा, स्थान, लोगों और शासकों के बारे में ऐतिहासिक सामग्री विवेचित है।

मसलन १९१५ के सालाना ब्योरे (रिपोर्ट) में योजना की प्रगति की जानकारी के साथ जोधपुर और बीकानेर के शासकों के हाथों में झूलती रही “फलोदी नगरी का संक्षिप्त इतिहास” दर्ज है। संवत् १२३६ (सन् ११८०) के एक शिलालेख और जोधपुर-बीकानेर में उपलब्ध हस्तलिखित ग्रंथों के हवाले से वे नगर का पुराना नाम विजयनगर बताते हुए दो रियासतों की रंजिश के बीच फलोदी को लेकर मुगलों की बंदरबांट को साफ करते हैं। फलोदी प्रवास के दौरान वे निकट के गांव कोलू जाते हैं और वहां हुए लोकदेवता पाबूजी की (पड़वाली) कथा में इतिहास के सूत्रों की पड़ताल करते हैं। प्रसंगवश, तैस्सितोरी पाबूजी पर लिखने वाले पहले लेखक थे।

इसी तरह, १९१७ के सालाना ब्योरे में तैस्सितोरी जोधपुर और बीकानेर राजघरानों में आन-बान के नाम चली आती वरिष्ठता की बहस (“व्यावहारिक स्तर पर निरर्थक”) का अपने तर्क पटाक्षेप करते हैं। इस नतीजे के साथ कि राव बीका जोधपुर के राजा राव सूजा के बड़े भाई थे, लेकिन संभवतः अलग रियासत बसा लेने की वजह से बीका को जोधपुर का उत्तराधिकार नहीं मिला। कर्नल टॉड के बीकानेर के इतिहास को “दोषपूर्ण” बताते हुए तैस्सितोरी अनेक पारंपरिक इतिहास-ग्रंथों (बात, ख्यात, विगत आदि) और शिलालेखों का हवाला देते हैं। उनके मुताबिक बड़े भाई, जोधपुर के राजा राव सातल, की युद्ध में आकस्मिक मृत्यु के बाद बीका अपना दावा लेकर जोधपुर पहुंच गए थे, पर मेहरानगढ़ दुर्ग का द्वार उनके लिए खोला नहीं गया।

गुड़दो पियानो के संग्रह में गद्य-पद्य की कृतियों, डायरी, पत्राचार, तस्वीरों और हस्त-ग्रंथों के साथ तैस्सितोरी के हाथ से लिखे कुछ इतिहास के पन्ने भी हैं। इनमें अनेक अब तक प्रकाशित नहीं हो सके हैं। अंग्रेजी में ‘बीकानेर का कालानुक्रम’ (७३ पृष्ठ) और ‘बीकानेर का इतिहास’ (६४ पृष्ठ) के अलावा उनमें एक हिंदी पांडुलिपि भी है ‘बीकानेर की कविता’। इसमें राजाओं की शख्सियत पर चारण कवियों की रचनाएं हैं। तैस्सितोरी की इच्छा इस काम को दो खंडों में प्रकाशित करवाने की थी; एक खंड में रचनाएं और दूसरे में ऐतिहासिक संदर्भों और टिप्पणियों के साथ काव्य की टीका। जाहिर है, आकस्मिक देहावसान से कई अधूरी इच्छाओं की तरह तैस्सितोरी की यह इच्छा भी अपूर्ण रह गई।

भाषाई विनोदप्रियता और हिंदी-राजस्थानी के प्रति तैस्सितोरी के लगाव को जाहिर करने वाले एक प्रसंग के साथ यह दास्तान पूरी करें। जुगलसिंह खीची ने बीकानेर के शार्दूल राजस्थानी शोध संस्थान की पत्रिका के लिए यह संस्मरण १९५६ में लिखा था। सदी के शुरू के वर्षों में वे आगरा के जेट जोन्स कॉलेज में पढ़ाते थे। बीकानेर में घर था, जहां तैस्सितोरी से दोस्ती हुई। बाद में नोबल स्कूल के प्राचार्य होकर वे स्थाई रूप से बीकानेर लौट आए। खीची लिखते हैं, एक दफा राजस्थानी में दिलचस्पी का सबब पूछने पर तैस्सितोरी ने जवाब दिया: मेरी मातृभाषा की तरह राजस्थानी में भी ‘ओ’ और ‘ई’ का बाहुल्य है, जो मुझे आपकी तरफ खींच लाया! “रात यहां जब ‘रातड़ली’ बन जाती है तो समझो गरमी में भी रस बरसाती है!” फिर अपनी मूंछ मरोड़ कर हंसते हुए बोले, संस्कृत सीखी तब लिंग-भेद ने मुझे तंग कर डाला था। हिंदी और राजस्थानी में भी इसका भूत मेरे पीछे पड़ा रहता है। शुरू में मेरी धारणा थी कि अकारांत नाम पुल्लिंग और आकारान्त-ईकारान्त स्त्रीलिंग होते हैं। इसलिए मैं ‘मेरा मूंछ और उसका मरोड़’ बोलता था। एक बार मेरे मुंह से अमुक पुरुष की बहनोई भी निकल गया। लेकिन यह गलती मैं ही कहां करता हूं! एक बार कलकत्ते में ईकारान्त नाम की वजह से डाकिया मेरे अर्दली से पूछ बैठा था: ये तैस्सितोरी कहां की रहने वाली है?